International Journal of Applied and Universal Research **E- ISSN No: 2395-0269**
Volume V, Issue III, October 2018 Available online at: www.ijaur.com

"व्यावसायिक तथा नैतिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा–नीति का अध्ययन"

डॉ. रमेश प्रसाद पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक शिक्षाशास्त्र
श्रीयुत महाविद्यालय, गंगेव, रीवा (म.प्र.)

सारांश– शिक्षा विभिन्न स्तरों पर आर्थिक प्रगति के लिये मानव–शक्ति का विकास करती है। शिक्षा ही राष्ट्रीय आस्था को बनाये रखने के लिये विभिन्न प्रकार के शोध और विकास–प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने के लिये आधार बनती है। राष्ट्रीय शिक्षा–नीति का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि वह राष्ट्र के वर्तमान और भविष्य के लिये सर्वोत्तम पूँजी–निवेश है।

मुख्य शब्द – व्यावसायिक, नैतिक, शिक्षा–नीति एवं राष्ट्र ।

प्रस्तावना–

आधुनिक शिक्षा–पद्धति के दूषित पाठ्यक्रमों पर विचार करके भारत–सरकार ने नयी शिक्षा–नीति की रचना की है और वह लागू भी है, तथापि भारत के कोने–कोने से उसमें परिवर्तन के सुझाव आ रहे हैं, जिनके आधार पर हमारे युवा प्रधानमन्त्री तथा शिक्षामंत्री दोनों ही व्यावसायिक तथा नैतिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा–नीति की पुनःसंरचना पर बल दे रहे हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा के संदर्भ में भूतपूर्व शिक्षामंत्री तथा मूर्धन्य चिन्तक डॉ. कर्ण सिंह द्वारा प्रस्तुत नयी शिक्षा नीति की रूपरेखा सर्वोत्कृष्ट है। उन्हीं के शब्दों में–'भारत आज जिस भारी परिवर्तन के प्रवेश द्वार पर खड़ा है, उसकी नींव हमारे बदले हुए आबादी के ढाँचे और स्वतन्त्रता के समय से अपनायी गयी अनेक आर्थिक तथा विकासोन्मुख नीतियों के संचित प्रभाव द्वारा रखी गयी है। इसके लक्षण नयी पीढ़ी में नयी जागरूकता तथा आत्मविश्वास के रूप में प्रकट होने लगे है। नागरिक तथा ग्रामीण क्षेत्रों के युवा पुरुषों तथा स्त्रियों में एक विलक्षण परिवर्तन देखने में आ रहा है, जो उन लोगों को दिखलायी नहीं पड़ता, जिनके विचारों की सुई स्वाधीनता–पूर्व की विचार–पद्धति में ही अटक कर रह गयी है। उनकी आँखों की चमक देखकर प्रसन्नता होती है। हम उन्हें प्रायः पर्याप्त रोष–भरे पाते हैं, परंतु उनमें कुछ अच्छा कर दिखाने और अपना तथा राष्ट्र का समुचित भविष्य बनाने की अदमनीय आकांक्षा प्रतिबिम्बित होती है।

आज सभी अनुभव करते हैं कि वर्तमान विश्वविद्यालय राष्ट्रनिर्माण के स्थान से च्युत हो गये हैं, विद्यार्थियों में स्वदेशाभिमान एवं उत्तरदायित्व का अभाव है। सभी मानते हैं कि वर्तमान अनुलिपिकारिणी शिक्षक–प्रणाली देश के लिये अनुपयुक्त एवं अभिशाप है। सभी लोग हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर सुशोभित करने की बात कहते हैं तथा क्षेत्रीय भाषाओं को विकसित करने की बात का समर्थन भी करते हैं, परन्तु फिर भी अंग्रेजी भाषा का ही एक छत्र साम्राज्य है। सभी ओर विचार एवं कर्तव्य में गतिरोध पैदा हो गया है।

विश्लेषण –

21वीं सदी की ओर सिर के बल सरपट दौड़ती दुनियां में हमें भ्रष्टाचार, अंधविश्वास और रूढ़िवाद की बेड़ियाँ तोड़ने के लिये प्रबल प्रयत्न करने का आह्वान मिल रहा है, जिन्होंने हमें इतने समय से बाँध रखा है। हमें आभ्यन्तरिक और बाह्य शक्तियों को संगठित कर भविष्य में दृढ़तापूर्वक प्रवेश करना है। निस्संदेह इस प्रक्रिया का प्रमुख साधन हमारी शिक्षा–प्रणाली होगी। इसलिये यह उपयुक्त ही है कि हमारे युवा प्रधानमंत्री ने शिक्षा की पुनः संरचना पर विशेष बल दिया है, परन्तु दुःसाध्य कार्य को आरम्भ करने के पूर्व हमारे मस्तिष्क में यह ठीक–ठीक स्पष्ट हो जाना चाहिये कि हम क्या पाना चाहते हैं; क्योंकि बिना स्पष्ट लक्ष्य के पूरी व्यवस्था को छेड़ना नकारात्मक और आत्मघाती अभ्यास होगा।'

डॉ. मुरारीलाल शर्मा का कथन है कि –''शिक्षा की प्रक्रिया युग–सापेक्ष होती है। युग की गति और उसके नये–नये परिवर्तनों के आधार पर प्रत्येक युग में शिक्षा की परिभाषा और उद्देश्य के साथ ही उसका स्वरूप भी बदल जाता है। यह मानव–इतिहास की सच्चाई है। मानव के विकास के लिये खुलते नित नये आयाम शिक्षा और शिक्षाविदों के लिये चुनौती का कार्य करते हैं, जिसके अनुरूप ही शिक्षा की नयी परिवर्तित–परिवर्द्धित रूपरेखा की आवश्यकता होती है। शिक्षा की एक बहुत बड़ी भूमिका यह भी है कि वह अपनी जाति, धर्म, संस्कृति तथा इतिहास को अक्षुण्ण बनाये रखे, जिससे कि राष्ट्र गौरवशाली अतीत भावी पीढ़ी के समक्ष द्योतित हो सके और युवा पीढ़ी अपने अतीत से कटकर न रह जाय।''

राष्ट्रीय शिक्षा भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास का एक सशक्त माध्यम है, यह स्वीकारते हुए नयी शिक्षा–नीति में यह निर्णय लिया गया है कि शिक्षा अनिवार्य रूप से सभी के लिये सुलभ हो। जाति, वर्ण, लिंग आदि का भेदभाव किये बिना शिक्षा–प्राप्ति के अवसर सभी के लिये समान रूप से मिले। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये नयी शिक्षा–नीति में प्रौढ़–शिक्षा, नारी–शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा पर विशेष महत्व दिया गया है। इंदिरा गाँधी खुला विश्वविद्यालय तथा नवोदय विद्यालयों की स्थापना इस दिशा में एक क्रान्तिकारी कदम है। नवोदय विद्यालयों के द्वारा उच्च स्तरीय शिक्षा

सरकार द्वारा दी जा रही है, इन विद्यालयों में पढ़ने वाले बालक–बालिकाएँ प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों से चुने जाते हैं और उनका चुनाव प्रतिभा के आधार पर किया जाता है। गरीब, ग्रामीण उपेक्षित; किंतु प्रतिभाशाली छात्र–छात्राओं की आवास, भोजन, पुस्तकों आदि की व्यवस्था सरकार द्वारा निःशुल्क की जाती है। इस व्यवस्था से 'पब्लिक स्कूलों' की सम्भ्रान्तता का सामना किया जा सकेगा। ऐसे 'कामन स्कूल सिस्टम' सर्व–साधारण के लिये विद्यालयों का अनुमोदन 1968 की शिक्षा–नीति में भी किया गया था। खुले विश्वविद्यालय के द्वारा बिना किसी औपचारिकता के दूर बैठे स्त्री–पुरुष अपनी योग्यता बढ़ा सकते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा–नीति में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि वर्तमान भारत में प्रजातन्त्र, समाजवाद और धर्म निरपेक्षता के सिद्धांतों के अनुरूप जनता को संस्कार देने का कार्य शिक्षा ही करेगी। इस शिक्षा–नीति में वैज्ञानिक बुद्धि, स्वतन्त्र मानसिक तथा आत्मिक विकास पर विशेष बल दिया गया है। आज की एक बड़ी समस्या यह है कि हमारे समाज में नैतिक मूल्यों का अथवा जीवन–मूल्यों का क्षरण इतनी तीव्र गति से हुआ है कि एक प्रकार से नैराश्य का वातावरण उत्पन्न हो गया है। मूल्य–शिक्षा पर विशेष ध्यान केन्द्रित करने के लिये पाठ्यक्रम में मूल्यों को स्थापित करने–हेतु प्रयास किये जा रहे हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा–नीति में पूरे देश के लिये 10+2+3 प्रणाली को स्वीकार किया गया है। अब तक प्रत्येक राज्य की अपनी–अपनी प्रणाली थी। विश्वविद्यालयों तथा बोर्डों की परीक्षाओं और उनकी उपाधियों का स्तर और उसके लिये अध्ययन की अवधि अलग–अलग थी। 1987 से सभी विश्वविद्यालयों में त्रिवर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम प्रारम्भ कर दिया गया है। एकरूपता की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण निर्णय है।

राष्ट्रीय पहचान को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये पूरे देश में विभिन्न स्तरों पर राष्ट्रीय आन्दोलन, भारतीय संविधान तथा अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर एक–जैसे पाठ्यक्रम की योजना भी तैयार की गयी है। भारत ने सदा से अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और विश्वबन्धुत्व की भावना का विस्तार किया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की मानवतावादी भावना के विकास के लिये नयी शिक्षा–नीति में समुचित व्यवस्था की गयी है।

नयी शिक्षा–नीति में व्यवसायों को प्रमाण–पत्रों अथवा उपाधियों की अनिवार्यता से मुक्त करने की व्यवस्था दी गयी है। व्यक्ति की योग्यता को ही व्यवसायों के लिये चयन का आधार माना जायेगा। महात्मा गांधी के स्वप्नों को साकार करने के लिये, ग्रामीण विश्वविद्यालय खोलने का भी अनुमोदन नयी शिक्षा–नीति में किया गया है। व्यवसायोन्मुख शिक्षा तथा संस्कृति परक शिक्षा नयी शिक्षा नीति के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं।

नयी शिक्षा–नीति में बालक अथवा बालिका को ही केन्द्र में रखकर चलने की बात कही गयी है अर्थात् शिक्षा–तन्त्र में सर्वाधिक महत्व शिक्षार्थी को दिया जायगा। प्रबन्धक, प्राचार्य, शिक्षक, पाठ्यक्रम–समितियाँ शिक्षार्थी को प्रमुख मानकर नीतियों का निर्धारण करेगी।

अध्यापकों की आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति को सुधारने के लिये नयी शिक्षा–नीति में अनेक व्यवस्थाएँ भिन्न–भिन्न स्तरों के अनुरूप दी गयी हैं। समाज में अध्यापक की भूमिका महत्वपूर्ण हो और वह अपनी योग्यता तथा अपने कौशल का निरन्तर विकास करता रहे, इस दृष्टि से इस नीति में अनेक उपाय बताये गये हैं। अनेक प्रकार के प्रशिक्षण–कार्यक्रम तथा नये वेतनमान देकर सरकार ने इस दिशा में सक्रिय भूमिका निभानी आरम्भ कर दी है।

नयी शिक्षा–नीति में बहुत कुछ नया और प्रयोगात्मक है। राष्ट्रीय एकता, धर्म–निरपेक्षता और समानता की भावना के विकास के लिये बहुत कुछ कार्य आरम्भ किया जा चुका है, किंतु अनेक प्रश्न ऐसे भी हैं जिनका समाधान नीति–निर्धारकों के पास मिलना कठिन है। यहाँ संक्षेप में उन समस्याओं की चर्चा अनुपयुक्त नहीं होगी।

राष्ट्रीय शिक्षा–नीति में संस्कृत भाषा और साहित्य सर्वथा उपेक्षित रहा है। नवोदय विद्यालयों का प्रतिभाशाली विद्यार्थी तो इस बात से सर्वथा अनजान ही रह जायगा कि संस्कृत भी कोई भाषा है और भारतीय संस्कृति का स्रोत मूलरूप से संस्कृत–साहित्य में ही विद्यमान है। एक ओर संस्कृत की उपेक्षा की गयी है और दूसरी ओर नयी शिक्षा–नीति में संस्कृति पर विशेष बल दिया गया है। यह बहुत बड़ा विरोधाभास है।

दूसरी समस्या नीति–निर्धारकों की मानसिकता की है। एक ओर वे अत्यन्त महँगी शिक्षा–व्यवस्था का सूत्रपात कर रहे हैं, जिसमें दूर–संचार–माध्यम, कम्प्यूटर एवं महँगे उपादानों का प्रयोग किया जा रहा है और करोड़ों रुपये व्यय करके नवोदय विद्यालयों में मुट्ठीभर बालक–बालिकाओं को राष्ट्र के भविष्य के लिये तैयार किया जा रहा है तथा दूसरी ओर लाखों ऐसे विद्यालय देश भर में हैं, जिनमें बच्चों के बैठने की व्यवस्था और शिक्षकों की नियुक्ति का उपक्रम भी नहीं हुआ है।

नयी शिक्षा–नीति क्या है? इस सम्बन्ध में सही जानकारी उन शिक्षकों तक को नहीं दी जा सकी है जिन पर इसके लागू करने का गुरुतर दायित्व है। अंग्रेजी भाषा के प्रभुत्व से हम अब तक मुक्त नहीं हो सके हैं, अपितु अधिकाधिक उसके व्यामोह में फॅसते जा रहे हैं। यहाँ तक कि नयी शिक्षा–नीति का प्रारूप तथा उससे सम्बन्धित लेख भी हिंदी में उपलब्ध नहीं हो सके हैं। खुले विश्वविद्यालय, नवोदय विद्यालयों की समस्त कार्यवाही तथा पत्र–व्यवहार शत–प्रतिशत अंग्रेजी में ही हो रहा है।

यदि सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर न रहे तो नयी शिक्षा–नीति की बहुत–सी अच्छी नीतियाँ राष्ट्र के विकास में सहायक सिद्ध हो सकती है। भारतीय मानस की अगुआई इसके लिये आवश्यक है और उससे भी अधिक आवश्यक यह है कि शिक्षा के क्षेत्र को व्यवहारतः राजनीति से सर्वथा मुक्त रखा जाय।

जिस शिक्षा का राष्ट्रीय जीवन से निकट सम्बन्ध न हो उसे महात्मा गांधी निरर्थक ही मानते थे। वे स्कूली शिक्षा को बहुत महत्व नहीं देते थे। एक बार महात्मा गांधी के भतीजे के सुपुत्र अपनी बाल्यावस्था में बापू के साथ पैदल चल रहे थे। अवसर पाकर उन्होंने कहा– ''बापू! दादी कहती हैं कि तू तो बेपढ़ा रह जाएगा, देख तेरे साथी ऊँचे दर्जों में पढ़ रहे हैं। मैं दादी को क्या उत्तर दूँ?'

गाँधीजी ने उत्तर दिया – 'तू दादी से कह देना कि मैं तो बापू के स्कूल में पढ़ रहा हूँ।' बापू अपने उस पौत्र को एक ईमानदार सार्वजनिक कार्यकर्ता बनाना चाहते थे और वे यह भलीभाँति जानते थे कि इस देश को जितनी आवश्यकता ईमानदार कार्यकर्ताओं की है, उतनी डिग्रीधारी युवकों की नहीं है।

महात्मा गाँधी 'राष्ट्रीय शिक्षा' किसे कहते थे, इस पर प्रकाश डालने से पूर्व यह बतला देना आवश्यक है कि वे 'अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा' किसे कहते थे। 'गाँधी–विचार–दोहन' में इस विषय पर बड़ी स्पष्टता से प्रकाश डाला गया है –

(1) 80–85 प्रतिशत लोगों के जीवन की आवश्यकताओं पर विचार करने के सिवा मुट्ठीभर लोगों की अथवा राज्यसी कुछ विभागों की आवश्यकताओं पर ध्यान देकर जो शिक्षा दी जाती है, उसे हम 'राष्ट्रीय शिक्षा' कदापि नहीं कह सकते।

(2) ऐसी शिक्षा ने शिक्षित और अशिक्षित लोगों के बीच गहरी खाई पैदा कर दी है तथा विद्वानों को लोगों के अगुआ, पथ–प्रदर्शक तथा प्रतिनिधि बनाने के बदले जनता से अलग रखकर ऐसा बना दिया है कि न तो वे उनकी भावनाओं को समझ सकते हैं और न उनका पक्ष उपस्थित करने की योग्यता ही रखते हैं।

(3) इस शिक्षा ने अपना महत्व बढ़ाने के लिये भव्य भावनाओं, महान साधनों, प्रचुर पुस्तकों, मृगतृष्णा की तरह दूर से लुभाने वाले लोगों की आशाओं और तड़क–भड़क आदि का बड़ा आडम्बर रचकर लोगों को ऋण में डुबो दिया है।

(4) इस शिक्षा ने कितने ही संशय पैदा कर दिये हैं, जैसे अक्षरक्षान अर्थात् पुस्तकीय शिक्षा तथा अन्य शिक्षा दोनों एक ही वस्तु हैं। पुस्तकीय शिक्षा के बिना कोई शिक्षा बन ही नहीं सकती। लोगों में यह भी संदेह पैदा हो गया है कि बिना किसी शिक्षित मनुष्य के मजदूरों का जीवन बिताना और अपने हाथ से काम करना अपनी शिक्षा को लज्जित करना है। यह भी इस शिक्षा का एक भारी दोष है।

(5) इस शिक्षा ने लोगों को धर्म से विमुख कर दिया है और धर्म तथा संयम के उन संस्कारों को, जो सदियों से संगृहीत थे, मिटाने का ही काम किया है।

(6) ईश्वर, गुरु, बड़े–बूढ़ों की प्रतिष्ठा, नैतिक जीवन बिताने के लिये आग्रह और संयम तथा तप में श्रद्धा–इन विषयों पर इस शिक्षा ने पढ़े–लिखों को शंकाशील और नास्तिक बना दिया है।

(7) इस शिक्षा ने भोग तथा सम्पत्ति में ही श्रद्धा उत्पन्न कर दी है। बापू के इन कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे राष्ट्र के लिये किस प्रकार की शिक्षा को हानिकारक मानते थे।

भारत की राष्ट्रीय शिक्षा की रचना की नींव इस आधार पर रखनी चाहिये कि भारत के 80–85 प्रतिशत लोग किस प्रकार का जीवन व्यतीत करते हैं। चूँकि हमारे देश के 80–85 प्रतिशत लोग प्रत्यक्ष या अपरोक्ष रूप से खेती पर जीविका चलाते हैं, इसलिये उनकी शिक्षा इस दृष्टि से ही होनी चाहिये कि वे अच्छे किसान बन सकें और खेती से जुड़े हुए धंधों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। महात्मा गांधी की यह राय थी कि शिक्षा के फलस्वरूप जीविका का प्रश्न हल हो जाना चाहिये, इसलिये औद्योगिक शिक्षा हमारी शिक्षा का प्रधान अंग होना चाहिये। ऐसी शिक्षा या तो खेतों में या देहात में ही दी जा सकती है, कस्बों या शहरों में नहीं।

उनका मत था कि लिखने–पढ़ने का ज्ञान न होते हुए भी मनुष्य गिनती सीख सकता है, अपने उद्योग–धंधों का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है, साहित्य समझ सकता है, सुन सकता है और कण्ठस्थ भी कर सकता है। शिक्षा पर जो अनाप–शनाप खर्च किया जाता है, महात्मा गाँधी उसे फिजूलखर्च ही मानते थे। हमारे सैकड़ों शिक्षित मनुष्यों का ज्ञान–भण्डार इतना थोड़ा होता है कि उतनी शिक्षा लोगों को मौखिक दे देने में बहुत कम समय लगेगा।

महात्मा गाँधी कहते थे कि शिक्षा को थोड़े से वर्षों में पूरा कर लेने का मोह हमें छोड़ देना चाहिये। उद्योग करते हुए और आजीविका प्राप्त करते–करते भी यह शिक्षा जीवनभर चल सकती है। बापू शिक्षा में पुस्तकों पर कम से कम आधार रखना चाहते थे। वे यह नहीं कहते थे कि पुस्तकें रहें ही नहीं, अपितु बाचन की अपेक्षा श्रवण, दर्शन और क्रिया को वे अधिक महत्व देते थे।

दुर्भाग्यवश आज तक हम उस शिक्षा–प्रणाली में आमूल परिवर्तन नहीं कर पाये। हम इस विधा से इतने प्रभावित और अभ्यस्त हो गये हैं कि शिक्षा के सम्बन्ध में हमारा चिन्तन भारतीय संस्कृति की मूल धाराओं से जुड़ नहीं पा रहा है।

भारतीय शास्त्रों में शिक्षा के सम्बन्ध में पूर्ण गहराई से विचार हुआ है। शिक्षा का उद्देश्य लौकिक अभ्युदय के साथ–साथ परमात्म–तत्व की प्राप्ति ही मुख्य है।

निष्कर्ष –

आवश्यकता है कि विश्वविद्यालय बौद्धिक स्वातंत्र्य के केन्द्र बनें, हम मौलिक चिन्तन की ओर अग्रसर हों, ज्ञान कहीं से भी मिले, ग्रहण करें, किन्तु भारतीय आधार न छोड़ें, सुस्थिर एवं सुस्पष्ट शिक्षक नीति का अनुसरण करके विश्वविद्यालयों को जनाभिमुख बनायें। शिक्षा को हमारी सामाजिक जीवन–पद्धति के अनुरूप बनाया जाना चाहिये। पाठ ऐसे हों, जो जीवन और परिस्थितियों से सम्बन्धित हों, जिनसे छात्रों में देश–प्रेम की भावना का विकास हो और इस प्रेरणा का उदय हो कि हम दूसरों से जीवन–पर्यन्त सीखते ही रहें, क्योंकि जहाँ सीखना बंद किया, वहीं मस्तिष्क भी बंद हो जाता है। छात्रों को पुस्तकीय ज्ञान देने के बजाय उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाने की चेष्टा की जानी चाहिये, जिससे वे जाति–पांति, धर्म, भाषा, क्षेत्र और वर्ण आदि के कारण भेद–भाव न बरतें तथा बदल रहे विश्व की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार हों। राष्ट्र को नयी प्रतिभा मिले और लोगों की क्षमता बढ़े– यही शिक्षा–व्यवस्था का उद्देश्य होना चाहिये।

संदर्भ –

1. द वर्ल्ड क्राइसिस इन एजूकेशन, फिलिप एच कोपन्स, वर्ष 2010
2. ओलिव बैक्स–दि सोसियोलाजी आफ एजुकेशन, न्यूयार्क, वर्ष 2008
3. महादेव प्रसाद – महात्मा गांधी का समाज दर्शन, हरियाणा साहित्य अकादमी प्रकाशन चण्डीगढ़।
4. अनुसंधान परिचय, पारस नाथराम, वर्ष 2009
5. शिक्षा सेवा विनय और शील, पृष्ठ 86, प्रो. अनन्त.
6. महात्मा गांधी और राष्ट्रीय शिक्षा, पृष्ठ 399, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी.
7. व्यावसायिक तथा नैतिक मूल्यों के परिवेश में शिक्षा की उपयोगिता, पृष्ठ 35, डॉ. कर्ण सिंह.
8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति : एक विहंगावलोकन, पृष्ठ 361, डॉ. मुरारी लाल शर्मा.
9. खुली परीक्षा पद्धति–सम्भावनाएं और सीमाएं, पृष्ठ 66, डॉ. वी.के. राम.